|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

2/3 (श्लोक 10-19), रविवार, 06 अप्रैल 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/MjHf5Ew2Uaw

जीव, जगत व जगदीश्वर

श्रीभगवान्, सङ्कटमोचक श्री हनुमान जी, परमपूज्य गुरुजी श्री गोविन्द देव गिरि जी महाराज के पवित्र वन्दन के साथ आज के सत्र का प्रारम्भ हुआ।

आज श्रीराम नवमी के दिन श्रीमद्भगवद्गीता के दिव्य ज्ञान एवं भक्ति के सङ्ग भरे हुए मध्यांश अध्याय के अर्थ विवेचन को सुनने के लिये आये हुए साधकों का अभिवादन किया गया। माता सरस्वती, श्री वेदव्यास जी एवं श्री गुरुचरणों का स्मरण किया गया।

श्रीराम हमारे राष्ट्र के आराध्य देवता हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का जो ज्ञान श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया तथा अर्जुन द्वारा सुना गया, वह ज्ञान त्रेता युग में श्रीराम को उनके गुरु वशिष्ठ द्वारा सुनाया गया है, जब रामावतार में वे मानव रूप में हतोत्साहित हुए। रामावतार में वे दशरथ पुत्र थे। श्रीभगवान् का श्रीराम अवतार मानव अवतार है जबकि श्रीकृष्ण अवतार पूर्ण अवतार है। श्रीराम के अवतार में परमेश्वर ने मानव रूप में लीला की है। इस अवतार में उन्होंने सारे धर्म - पुत्र धर्म, पिता धर्म एवं राष्ट्र धर्म स्वयं जीकर दिखाये।

रामोविग्रहवान धर्माः।

श्रीकृष्ण नारायण तथा अर्जुन नर के प्रतीक हैं। अर्जुन स्वयं उत्तम पुरुष अर्थात पुरुषोत्तम हैं किन्तु समराङ्गण में अपने स्वजनों को अपने विरुद्ध खड़ा देखकर वे मोहवश हतोत्साहित हो गये। अपना धनुष गाण्डीव नीचे रखकर वे रथ में पीछे की ओर जाकर बैठ गये।

दूसरे अध्याय के ग्यारहवें श्लोक से श्रीभगवान् के मुखारविन्द से गीताजी का यह ज्ञान प्रवाहित हुआ जिससे अर्जुन ने श्रीकृष्ण का शिष्यत्त्व स्वीकार किया और उन्हें अपना गुरु माना।

शिष्यस्तेहम शादिमान्त्वाम प्रपन्नम।

श्रीराम त्रेतायुग में सृष्टि में व्याप्त दुःख को देखकर हतोत्साहित हो गये थे। इन सबको निरर्थक मानकर वे शोकाकुल अवस्था में चले गये। इस अवस्था से उन्हें उनके गुरु महर्षि वशिष्ठ ने ज्ञान के द्वारा बाहर निकाला। इसके बाद वे अपने इस अवतार के कर्त्तव्यों एवं राजधर्म को निभाने के लिये अग्रसर हुये। जो उपदेश गुरु वशिष्ठ ने उन्हें दिया वह '**योग वाशिष्ठ्य**' नामक ग्रन्थ के

रूप में उपलब्ध है। इसी उपदेश का अनुसरण करते हुए श्रीराम ने अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करते हुए सभी असुरों का वध किया और सच्चिदानन्द की प्राप्ति की।

त्रेता युग में सुने गये उपदेश को द्वापरयुग में उन्होंने स्वयं श्रीकृष्ण के रूप में हतोत्साहित अर्जुन को सुनाया, इसलिए गीताजी के इस ज्ञान का श्रीराम से ये पवित्र सम्बन्ध है जिसके मध्य में आज का हमारा अध्याय स्थित है। इस अध्याय का नाम **'राजविद्याराजगुह्य योग' है।**

परम पूज्य गुरु श्री गोविन्ददेव गिरि जी महाराज, श्रीकृष्ण के समान अपने शिष्यों को जब इस अध्याय का अर्थ विवेचन बताते हैं तो उसे सुनना एक सुखद अनुभूति है। इस परमानन्द को सभी के साथ बाँटा जाना चाहिये। सद्गुरु कहते हैं कि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अध्याय है। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज जिन्होंने बाइसवें वर्ष में सजीवन समाधी ली, उन्होंने तब यही नौवाँ अध्याय अपने समक्ष रखा था। ज्ञात हो कि सजीवन समाधी का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। अपने जीवन के सोलहवें वर्ष में उन्होंने ज्ञानेश्वरी के रूप में गीताजी पर भाष्य लिखा जिसमे नौ सहस्र ओवियाँ (पङ्क्तियाँ) हैं। यह अध्याय उनका परम प्रिय अध्याय है क्योंकि इस अध्याय में ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा कर्मयोग का मिलन देखने को मिलता है।

यद्यपि सम्पूर्ण गीताजी स्वयं में परिपूर्ण एवं पवित्र है किन्तु जिस प्रकार गङ्गा माता सभी स्थानों पर समान रूप से पूज्य होते हुए भी कुछ विशेष स्थानों हृषिकेश, हरिद्वार, काशी इत्यादि में अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं, उसी प्रकार गीताजी के भी कुछ अध्याय अति पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। उन विशेष अध्यायों में भी नवम अध्याय का स्थान सर्वोच्च है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि श्रीभगवान् इसमें कुछ अपूर्व कहने वाले हैं। यह अनिर्वाच्य अध्याय है क्योंकि इस अध्याय का अर्थ विवेचन पूर्ण रूप से कोई भी नहीं कर पाया है। यहाँ श्रीभगवान ने सारे रहस्यों को उजागर कर दिया है। राजविद्याराजगुह्य योग नामक इस अध्याय में जीव, जगत और जगदीश्वर का परस्पर सम्बन्ध कैसा है? राज विद्या और राज गुह्य की सारी बातें श्रीभगवान् ने नौवें श्लोक तक बता दी हैं। किस प्रकार ईश्वर सृष्टि में व्याप्त हैं और सृष्टि किस प्रकार ईश्वर में बसी है? किस प्रकार से सब में होते हुए भी मैं कहीं नहीं हूँ? ये सब गूढ़ रहस्य की बातें हैं।

जिस प्रकार सिनेमा के पटल पर हमें सारे दृश्य दिखते हैं जोकि वास्तव में हैं ही नहीं और वह पटल नहीं दिखता जो वास्तव में है, उसी प्रकार ईश्वर के आधार पर यह सृष्टि बसी हुई है किन्तु सृष्टि में मन लगा होने के कारण हम ईश्वर के स्थान पर सृष्टि को ही देख पाते हैं।

जिस प्रकार सागर में लहरें उठती हैं अर्थात् लहरें तो सागर में होती हैं किन्तु लहरों में सागर नहीं होता है उसी प्रकार सृष्टि के दृश्य में ईश्वर विद्यमान तो हैं परन्तु दिखायी नहीं देते हैं। यदि हम सृष्टि की सेवा करेंगे तो उस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। यदि सृष्टि की सेवा को परमात्मा की सेवा समझकर करेंगे तो ही हमें भगवद्प्राप्ति होगी। ये बातें समझाते हुए श्रीभगवान् आगे दसवें श्लोक में बताते हैं कि इस सृष्टि में आने के बाद परमात्मा व्यवहार और कर्म कैसे करते हैं और ज्ञान अर्थात् राजगुह्य को विज्ञान में कैसे परिवर्तित करते हैं।

ज्ञान सिद्धान्त है जबकि विज्ञान कर्म है। आगे यह भी कहा गया है कि इन सबके बाद भी अपने कर्मों के अनुसार जीव बार-बार इस संसार में आता है और अपने बन्धनों और वासनाओं से बँधा हुआ होता है जबकि जब मैं संसार में आता हूँ तो मैं किसी बन्धन में नहीं बँधता हूँ।

मैं साक्षीभाव से अपने कर्मों को देखता हूँ जैसे श्रीकृष्ण ग्वाले के रूप में जन्म लेते हैं, गौओं को चराते हैं, कंस का वध करते हैं, पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में अतिथियों के पग धोते हैं, जूठी पत्तलें भी उठाते हैं और महाभारत के युद्ध में अर्जुन के रथ के सारथी भी बनते हैं। सन्ध्याकाल में अन्य योद्धाओं की भाँति अपने अश्वों के घावों की स्वच्छता और सेवा सुश्रुषा भी करते हैं।

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन- अब श्रीभगवान् जीव, जगत और जगदीश्वर के मध्य सम्बन्धों की चर्चा करते हुए बताते हैं कि जीव और जगदीश्वर के मध्य में जगत है। इस सारी सृष्टि की अध्यक्षता मैं करता हूँ। मेरी सहायता से प्रकृति इस संसार की रचना करती है। जिस प्रकार हम ब्रह्माण्ड में देखते हैं कि सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी सहित सारे ग्रह अपने-अपने कक्ष में रहते हुए लगाते हैं। सूर्य स्वयं भी अपने अक्ष पर परिक्रमा कर रहा है। वास्तविकता यह है कि हम जिस सृष्टि को स्थिर समझ रहे हैं वह निरन्तर गति में है।

यह सारा कार्य ईश्वर की अध्यक्षता में हो रहा है। जिस प्रकार किसी संस्था का अध्यक्ष कोई कार्य स्वयं नहीं करता है अपितु उसकी उपस्थिति मात्र से समस्त कार्य सुचारू रूप से होने लगते हैं, उसी प्रकार ईश्वर स्वयं कोई कार्य करें अथवा न करें किन्तु उनकी उपस्थिति मात्र से समस्त सृष्टि चल रही है।

जिस प्रकार सामर्थ्य (potential) होने मात्र से कुछ नहीं होता जब तक बिजली की धारा (current) न प्रवाहित हो। जब विद्युत धारा (current) प्रवाहित होगी तभी उपकरण कार्य करें लगे। सारा कार्य सामर्थ्य के कारण होता है। विद्युत धारा (Current) के बिना सामर्थ्य (potential) हो सकता है परन्तु सामर्थ्य (potential) के बिना विद्युत धारा (current) नहीं हो सकती है।

विद्युत का निर्माण जिस प्रकार चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभाव में आने से होता है उसी प्रकार ईश्वर की चैतन्यमय ऊर्जा में आने से इस सृष्टि का निर्माण एवं कार्य होता है। ईश्वर इस जगत के बिना हो सकते हैं परन्तु यह जगत ईश्वर के बिना नहीं हो सकता।

अन्तरिक्ष में वायुमण्डल नहीं है किन्तु फिर भी जो लोग वहाँ जाते हैं वे वहाँ रह पाते हैं क्योंकि ईश्वर के द्वारा ही प्रत्येक स्थान को नियन्त्रित किया जा रहा है।

9.11

अवजानन्ति मां(म्) मूढा, मानुषीं(न्) तनुमाश्रितम्।
परं(म्) भावमजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम्।।9.11।।

मूर्ख लोग मेरे सम्पूर्ण प्राणियों के महान् ईश्वररूप श्रेष्ठ भाव को न जानते हुए मुझे मनुष्य शरीर के आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर (मेरी) अवज्ञा करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि जो लोग मेरे अवतार लेकर आने वाले सगुण रूप को नहीं मानते हैं अर्थात् जब मैं मानव शरीर का आश्रय लेकर धरती पर अवतरित होता हूँ तो मूढ़ लोग मुझे परमात्मा नहीं मानते हैं। वे अवतार को भी नहीं मानते हैं। ईश्वर के सगुण साकार विग्रह को भी नहीं मानते हैं।

हमारे सन्त महात्माओं ने कहा है-

सगुण निर्गुण दोन्ही ज्याची अङ्गें,
तो आम्हा साङ्ग क्रीड़ा करी।

ये दोनों उस परमात्मा के ही स्वरूप हैं। जो अवतार लेकर आते हैं वे भी परब्रह्म परमात्मा ही हैं परन्तु लोग उन्हें भली प्रकार से जानते नहीं हैं,
जैसे शिशुपाल श्रीकृष्ण को मनुष्य ही समझता था वहीं दूसरी ओर कुछ लोग ईश्वर को तो मानते हैं किन्तु उनके विविध स्वरूपों को भिन्न समझते हैं।

जो लोग श्रीराम को मानते हैं वे श्रीकृष्ण को नहीं मानते हैं। जो शैव होते हैं वे विष्णु भगवान् का अस्तित्व नहीं मानते हैं और जो किसी एक धर्म से जुड़े हुए हैं वे किसी दूसरे धर्म को नहीं मानते हैं। यह भी एक प्रकार से परमात्मा को छोटा मानना ही है क्योंकि उन्हें किसी भी एक रूप तक सीमित करके सोचना उन्हें छोटा समझना ही है। कुछ लोग प्रकृति को मानते हैं, जैसे नदियों की पूजा करते हैं। ये लोग नदी के भौतिक स्वरूप को तो मानते हैं किन्तु चैतन्य स्वरूप को नहीं मानते हैं।

एक बार एक छोटा बालक ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता था। वह और उसके पिता दोनों ही बहुत सुन्दर चित्र बनाते थे। एक बार जब वह सोया था तो पिता ने एक चित्र बनाकर उसके सिरहाने के पास रख दिया। बालक जब सोकर उठा तो उसे वह चित्र बहुत अच्छा लगा। उसने अपने पिता से पूछा तो उन्होंने कहा कि यह चित्र स्वयं बन गया है तो बालक को विश्वास नहीं हुआ। इस पर पिता ने उसे समझाया कि जब तुम इस सृष्टि के ईश्वर द्वारा सञ्चालित होने पर शङ्का कर सकते हो, तुम्हें लगता है वह अपने आप सञ्चालित हो रही है तो यह क्यों नहीं हो सकता?

यदि घट बने हैं तो उन्हें बनाने वाला कुम्हार भी होगा। इसी प्रकार से यदि सृष्टि बनी है तो इसका रचयिता भी अवश्य होगा।

No creation without creator.

श्रीभगवान् यही कह रहे हैं कि लोग मुझे किसी न किसी स्वरूप में बाँध देते हैं तथा आपस में मतभेद हो जाते हैं। सारी उपासना पद्धतियों की विडम्बना यह है कि भिन्न-भिन्न पद्धतियों का अनुसरण करने वाले दूसरी पद्धतियों की अवहेलना करते हैं। ईश्वर के नाम, जाति और वर्ण को लेकर लड़ते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि

मज वर्ण ही न वर्णू
मज गुणातीतासी गुणु
मज अचरणासी चरणु
अपणीया पाणी।

मेरा कोई वर्ण नहीं है, मैं गुणातीत हूँ, मेरे चरण नहीं हैं फिर भी मुझे स्वरूप में बाँधकर मेरी आराधना करते हैं और विभिन्न सम्प्रदायों में बँटकर उसके लिए आपस में झगड़ते हैं। इसके साथ ही वे मेरी ही बनाई हुई सृष्टि को बाँटते हैं।

एक गुरु के दो शिष्य थे। दोनों ही उनकी सेवा करना चाहते थे इसलिए आपस में झगड़ा करते थे। गुरु ने अपने शरीर के दाहिने तथा बाएँ भाग उन दोनों में बाँट दिए। एक बार एक दाहिने भाग की सेवा करने वाले शिष्य को गुरुजी ने कहीं किसी कार्य से भेजा। अब उसके भाग का गुरुजी का पैर दुखने लगा तो गुरुजी ने बाएँ भाग वाले दूसरे शिष्य से उसे दबाने को कहा। इस बात पर वह शिष्य उसे दूसरे वाले शिष्य के भाग का पैर समझकर दबाने लगा जिससे उनकी पीड़ा और बढ़ गई। अगले दिन शिष्य के लौट आने पर गुरुजी ने जब उसे उनकी पीड़ा का कारण बताया तो उसने एक बड़ा सा पत्थर लेकर गुरुजी के बाएँ पैर पर पटक दिया।

इस कथा से हम समझ सकते हैं कि जो सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है उसे विभाजित करने से उसे पीड़ा होती है। परमात्मा को ठीक से न जानने के कारण इस सृष्टि का नाश होता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं तो भाव रूप हूँ।

भाव बळे आकळे एरवी ना कळे
तळ हाती आवळे तैसा हरी।

यह अध्याय ईश्वर को जानने की अभेद दृष्टि देता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! इस सृष्टि में रहने वाले लोग भी चार प्रकार

के होते हैं। सृष्टि के आश्रय में रहते भी हैं और भ्रान्ति का निर्माण भी करते हैं।

9.12

मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं(ञ्) चैव, प्रकृतिं(म्) मोहिनीं(म्) श्रिताः।।9.12।।

(जो) आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे अविवेकी मनुष्यों की सब आशाएँ व्यर्थ होती हैं, सब शुभ-कर्म व्यर्थ होते हैं (और) सब ज्ञान व्यर्थ होते हैं अर्थात् जिनकी आशाएँ, कर्म और ज्ञान (समझ) सत्-फल देने वाले नहीं होते।

विवेचन- मोघ का अर्थ होता है व्यर्थ की आशा।

श्रीभगवान् सृष्टि में रहने वाले तीन प्रकार के व्यक्तियों का वर्णन इस श्लोक में करते हैं।

हमने सोलहवें अध्याय में पढ़ा है

द्वौभूतसर्गो लोकेस्मिन दैवआसुर एव च।

श्रीभगवान् ने इस सृष्टि का विभाजन दो भागों में किया है, गुणों की **उच्चता और नीचता** के आधार पर। **जाति, धन, सत्ता या राष्ट्र** के आधार पर नहीं। इस संसार में दो ही प्रकार के लोग हैं, अच्छे या बुरे।

व्यर्थ की आशा करने से कर्म भी व्यर्थ हो जाता है। जिस प्रकार चाय में नमक डालकर उससे मीठा होने की आशा करना व्यर्थ है। पूज्य स्वामी जी कहते हैं कि जिस कर्म से भक्ति, ज्ञान और वैराग्य प्राप्त नहीं होता है वह कर्म व्यर्थ है। जिस मनुष्य के मन में संसार के प्रति वैराग्य, ईश्वर के प्रति भक्ति तथा इस सृष्टि के ज्ञान का निर्माण नहीं होता है उसके सारे कर्म व्यर्थ हो जाते हैं।

(Electrical engineering) का एक उदाहरण आता है जिसमें एक **सक्रिय ऊर्जा** (active energy) तथा एक **प्रतिक्रियाशील ऊर्जा** या **अभिक्रियाशील ऊर्जा** (reactive energy) होती है। सक्रिय ऊर्जा अधिक होनी चाहिए और प्रतिक्रियाशील ऊर्जा कम होनी चाहिए। इसके लिए वहाँ (capacitors) लगाए जाते हैं। इसी प्रकार जीवन में प्रतिक्रिया करने में हम अपनी ऊर्जा जितनी कम लगायेंगे, हमारी क्रियाशीलता उतनी ही अधिक बढ़ेगी। जो कार्य सृष्टि के कल्याण के लिए नहीं है, वह सारा कार्य व्यर्थ है।

आजकल हम फोन पर सोशल मीडिया में अनेक प्रकार के चित्र तथा वीडियो देखते हैं और उन पर अपनी प्रतिक्रियाएँ भी देते हैं, जिसमें हमारा समय व ऊर्जा दोनों खर्च होते हैं तथा वे अनुपयोगी हैं। इससे मिला ज्ञान भी कई बार व्यर्थ होता है।

जिनका चित्त चञ्चल होता है, वे ऐसे कार्य करते हैं, उन्हें हम विचेतसा कहते हैं।
जो लोग इन बातों को समझते हैं, अपने जीवन के प्रति सचेत रहते हैं उन्हें हम सचेतसा कहते हैं।

ऐसे चञ्चल चित्त के विचेतस लोग इस संसार में तीन प्रकार के होते हैं।
राक्षसी, आसुरी और मोहिनी। ऐसे लोग संसार के आश्रय में ही रहते हैं।

राक्षसी लोग दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं। यहाँ एक बात समझने की है कि कई बार राक्षस के प्रतीक के रूप में श्याम वर्ण के लोगों को दिखाया जाता है। यह अनुचित है। श्रीकृष्ण भी श्यामवर्ण थे किन्तु वर्ण के कारण नहीं, अपने आचरण के कारण व्यक्ति राक्षस बनता है। जिन लोगों के कारण इस जगत की हानि होती है।

आसुरी प्रवृत्ति के लोग स्वयं के भ्रम में जीते हैं। वे व्यसनी भी होते हैं। ये लोग बुद्धिमान भी हो सकते हैं। जैसे मायासुर असुर था

किन्तु उसने अपनी बुद्धि और कुशलता से मायानगरी का निर्माण किया था। आसुरी लोग अपनी बुद्धि को अनुचित कार्यों में लगाते हैं जिससे सृष्टि का ह्रास होता है। ये गलत सिद्धान्तों का निर्माण कर देते हैं जिसके कारण इनका अनुसरण करने वाले व्यक्ति भी मार्ग भटक जाते हैं। ईश्वर के कार्यों से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता है।

मोहिनी प्रवृत्ति के व्यक्ति तमोगुण प्रधान होते हैं। पूर्वांचल में एक गाँव है जहाँ प्रतिदिन सन्ध्या के समय पुरुष और स्त्रियाँ सभी चावल से बनी हुई मदिरा का सेवन करते हैं और अगले दिन पुनः अपने अपने कार्य करने चले जाते हैं, किन्तु संसार के सभी लोग ऐसे नहीं होते हैं।

कुछ महात्मा लोग भी होते हैं जिनके कारण संसार उचित मार्ग पर चलता है। ये लोग कुछ न कुछ अच्छा कार्य करते हैं, जैसे गीताजी की सेवा में अगणित व्यक्ति अपने अपने स्तर पर कार्य कर रहे हैं। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को सत्कार्य में लगाकर उसे व्यर्थ करने से बचाते हैं।

9.13

महात्मानस्तु मां(म्) पार्थ, दैवीं(म्) प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो, ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।9.13।।

परन्तु हे पृथानन्दन ! दैवी प्रकृति के आश्रित अनन्य मन वाले महात्मा लोग मुझे सम्पूर्ण प्राणियों का आदि (और) अविनाशी समझकर मेरा भजन करते हैं।

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान् अर्जुन को पार्थ कहकर बुलाते हैं

पार्थ अर्थात् पृथा का पुत्र।

पृथा का अर्थ है कुन्ती। कुन्ती जोकि राजा कुन्तीभोज की पुत्री थी, अत्यन्त ही सज्जन तथा दैवीय गुणों से युक्त थीं। वे अपने पिता के महल में आने वाले ऋषि-मुनियों की सेवा करती थीं जिनके फलस्वरूप कुन्ती को अनेक वर प्राप्त हुए थे।

श्रीभगवान् इसीलिए अर्जुन को स्मरण कराते हैं कि तुम कुन्ती जैसी दैवीय सम्पदायुक्त माता के पुत्र हो जिसे उनके संस्कार मिले हैं।
महात्मा प्रवृत्ति के व्यक्ति प्रकृति का आश्रय लेकर मुझे ही संसार के प्रत्येक घटनाक्रम का कारण मानते हैं और सृष्टि की सेवा करते हुए मेरे अक्षर स्वरूप (कभी नष्ट न होने वाला) का निरन्तर ध्यान करते रहते हैं।

अमेरिकी राष्ट्रपति रूज़वेल्ट अपने पास महात्माओं की सूची रखते थे और उनके गुणों का अवलोकन करके वे गुण स्वतः में लाने का प्रयास करते थे।

हमें परमात्मा के प्रत्येक स्वरूप की आराधना करनी है। चाहे वह सगुण हो अथवा निर्गुण हो। ईश्वर के एक रूप को भजते हुए दूसरे स्वरूप की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। हमारे सन्त-महात्मा भी ईश्वर के प्रत्येक स्वरूप की पूजा करते हैं।

दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाए।
घर की चक्की ना पूजे कोई जिसका पीसा खाए।।

मान लीजिए हम निर्गुण के आराधक हैं किन्तु हम ईश्वर के सगुण रूप की आलोचना भी नहीं करेंगे। पत्थर की प्रतिमा में भी पूजा करने से परमात्मा अवतरित हो जाते हैं। परमात्मा की पूजा और भक्ति उन्हें पाने के लिये करना है, भोगों को प्राप्त करने हेतु नहीं। बहुधा हम विषयों की प्राप्ति हेतु ईश्वर को भजते हैं।

सातवें अध्याय में श्रीभगवान् चार प्रकार की भक्ति के बारे में बताते हैं। सङ्कट काल में श्रीभगवान् को पुकारने वाले आर्त भक्त होते हैं परन्तु मात्र मुझे प्राप्त करने हेतु भजने वाले भक्त अनन्य भक्त होते हैं।

जिस प्रकार बालक के अपनी माँ को बुलाने पर व्यस्तता के कारण मां उसे कुछ खिलौने देकर रिझाने का प्रयत्न करती है किन्तु जब वह बालक अपनी माता के बिना व्याकुल हो जाता है और आर्त पुकार लगाते हुए सब कुछ छोड़कर सीधा मां के पास चला जाता है तो माता भी उसे गोद में ले लेती है। ऐसी भक्ति अनन्य भक्ति कहलाती है।

स्वामी विवेकानन्द जी निर्गुण के उपासक थे और उनके गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस सगुण के उपासक थे। स्वामी परमहंस माता जगदम्बा की अनन्य भक्ति करते थे तथा उन्होंने ही विवेकानन्द जी को सम्पूर्ण ज्ञान दिया। विवेकानन्द जी के पिता जी की मृत्यु के पश्चात् माता तथा बहनों के भरण पोषण करने हेतु स्वामीजी अत्यधिक दुविधा में थे। उन्होंने अपने गुरु से माता जगदम्बा से उनके लिए प्रार्थना करने का आग्रह किया तो गुरुजी ने कहा कि आज मंगलवार है तो माता तुम्हारी हर इच्छा को पूर्ण करेंगी। तुम स्वयं ही माँग लो। मैंने तुम्हारे लिए माँ से प्रार्थना की है।

स्वामी विवेकानन्द जी गर्भ गृह में गए तो उन्हें साक्षात् मां जगदम्बा के दर्शन हुए। माता ने उनसे वर मांगने के लिए कहा तो उन्होंने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य माँगा।

बाहर आने पर उन्होंने अपने गुरु से इस घटना का वर्णन किया तो गुरु ने उन्हें पुनः भीतर भेजा। वे तीन बार भीतर गए परन्तु प्रत्येक बार उन्होंने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ही माँगा। स्वामीजी लौकिक वस्तुएँ माँग ही नहीं सके, तीनों बार अलौकिक ही माँगा।

ऐसे ही व्यक्तियों की गणना अनन्य भक्त के रूप में होती है।

9.14

सततं(ङ्) कीर्तयन्तो मां(यँ), यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां(म्) भक्त्या, नित्ययुक्ता उपासते॥9.14॥

नित्य- निरन्तर (मुझ में) लगे हुए मनुष्य दृढ़व्रती होकर लगन पूर्वक साधन में लगे हुए और प्रेम पूर्वक कीर्तन करते हुए तथा मुझे नमस्कार करते हुये निरन्तर मेरी उपासना करते हैं।

विवेचन - श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! मेरे दृढ़निश्चयी भक्त मेरी कीर्ति का गुणगान करते हुए मेरी भक्ति करते हैं।

पतञ्जलि मुनि का सूत्र है-

तीव्र संवेगाः आसन्ना, अर्थात् गान में तीव्र संवेग होता है।

गान ध्यान से भी ऊँचा माना जाता है। हमारे मन के संवेग मृदु, मध्य एवं तीव्र होते हैं। जब हम तीव्र गान या कीर्तन सुनते हैं तब हमारा मन भी परमात्मा के साथ एकाकार हो जाता है।

ईश्वर की सतत भक्ति करते हुए हम उन्हें सदैव स्मरण करते रहते हैं।
अब प्रश्न उठता है कि यदि हम ईश्वर भजन ही करते रहेंगे तो अपने नित्य कार्य कब करेंगे? इसका उत्तर है कि सृष्टि में घटने वाली प्रत्येक घटना को हम ईश्वर की कृपा के रूप में स्वीकार करते हैं। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। सूर्य स्थिर प्रतीत होते हुये भी अपने अक्ष पर घूमता है। स्थिर होते हुये भी हमें वह चलायमान दिख रहा है। पक्षी विचरण करते हैं, दाना चुगते हैं। वृक्ष और पौधे सूर्य से प्रकाश और ऊर्जा लेकर स्वयं का भोजन बनाते हैं तथा उन्हें खाकर हम भी पुष्ट होते हैं।

इसी प्रकार ईश्वर ने हमारी देह और उसके अवयव बनाए। हमारा हृदय सतत कार्य करता है। शरीर की अन्य प्रणालियाँ भी अपना कार्य सुचारू रूप से करती हैं। यह सब अत्यन्त आश्चर्यजनक है किन्तु यह ईश्वर की कीर्ति का ही प्रभाव है।

तपस्वियों सी अटल ये पर्वतों की चोटियाँ
ये सर्प सी घुमावदार घेरदार घाटियाँ
ध्वजा से ये खड़े हुए हैं वृक्ष देवदार के
बगीचे ये बहार के, गलीचे ये गुलाब के
ये किस कवि की कल्पना का चमत्कार है
ये कौन चित्रकार है, ये कौन चित्रकार।

कुछ व्यक्ति ईश्वर की कृति की प्रशंसा करते हुये कीर्तिमान करते हैं तो कुछ ज्ञान के प्रकाश के माध्यम से जगत का कल्याण करते हैं, जैसे हमारे वैज्ञानिकों ने कोरोना के समय इस रोग से बचाव का टीका बनाया।

9.15

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये, यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन, बहुधा विश्वतोमुखम्।।9.15।।

दूसरे साधक ज्ञान यज्ञ के द्वारा एकीभाव से (अभेद-भाव से) मेरा पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं और दूसरे भी कई साधक (अपने को) पृथक् मानकर चारों तरफ मुखवाले मेरे विराट रुप की अर्थात् संसार को मेरा विराट रुप मानकर सेव्य-सेवक भाव से (मेरी) अनेक प्रकार से (उपासना करते हैं)।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! कुछ लोग,

एकत्वेन अर्थात् ज्ञानयज्ञ से, भिन्न भाव न रखते हुए, अद्वैतभाव से मेरी सेवा करते हैं और

कुछ लोग **पृथकत्वेन अर्थात् द्वैत भाव** से मेरी उपासना करते हैं, जैसे

"**परमात्मा मेरे स्वामी हैं तथा मैं उनका दास हूँ,"** इस भाव से मेरी आराधना करते हैं।

जिस प्रकार यशोदा माता नन्दलाल की वात्सल्य भक्तिभाव से सेवा करती है। परमात्मा मेरी माँ हैं, मैं उनका छोटा सा बालक हूँ, यह लालन-भाव ठाकुर रामकृष्णदेव का था, कौशल्या माता का वात्सल्य भाव है और अर्जुन तथा उद्धवजी सखाभाव के साथ रहते हैं। गोपियाँ तथा मीराबाई श्रीभगवान् में स्वामी या पति का भाव देखती हैं, इसे माधुर्य भक्तिभाव कहते हैं।

सन्त गुलाबराव महाराज ने मधुराद्वैत भक्ति सम्प्रदाय का निर्माण किया। श्रीभगवान् अंशी है तथा मैं उनका अंश हूँ। यह ज्ञानी का भाव, हनुमान जी का दासभाव है। वैसे हनुमान जी तीनों भावों से श्रीभगवान् की आराधना करते हैं।

वे, "**सारा ब्रह्माण्ड उस परमात्मा में ही निहित है, उन्हीं का रूप है,"**
इस भाव से उनकी आराधना करते हैं। हनुमान जी को "**बुद्धिमतां वारिष्ठं",** अर्थात् **अत्यधिक बुद्धिमान** माना जाता है।

एक बार भगवान श्रीराम ने हनुमान जी से प्रश्न पूछा कि "हे हनुमान जी! हम दोनों का परस्पर क्या सम्बन्ध है?" हनुमान जी ने कहा-

देहदृष्ट्या दासोऽहम,

जीवदृष्ट्या अंशोऽहम,
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहम् ।

"अगर देह भावना से देखें तो मैं आपका दास हूँ, आपकी सेवा में हूँ। जीव की दृष्टि से देखें तो मैं आपका अंश हूँ। आत्म दृष्टि से देखेंगे तो मुझ में और आप में कोई अन्तर नहीं है। आप और मैं एक ही हैं।"

इस तरह अनेक भावों से श्रीभगवान् की आराधना करने वाले व्यक्ति होते हैं तथा श्रीभगवान् की विशेषता है कि जिस भाव से हम उनकी आराधना करते हैं, श्रीभगवान् उसी रूप में हमें प्राप्त होते हैं। हम यदि सखा बने तो श्रीभगवान् सखा बनते हैं, हम यदि लालन भाव से जाते हैं तो श्रीभगवान् माता-पिता बन जाते हैं, हम वात्सल्य भाव से आराधना करते हैं तो श्रीभगवान् नन्हें से बालक बन जाते हैं।

9.16

अहं(ङ्) क्रतुरहं(यँ) यज्ञः(स्), स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यम्, अहमग्निरहं(म्) हुतम्॥9.16॥

क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषध मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ (और) हवन रूप क्रिया भी मैं हूँ। जानने योग्य पवित्र, ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत का पिता, धाता, माता, पितामह, गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, आश्रय, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान (भण्डार) (तथा) अविनाशी बीज (भी मैं ही हूँ)। (9.16-9.18)

विवेचन- हम अ से वर्णमाला आरम्भ करते हैं तथा म् पर समाप्त करते हैं। इन दो वर्णों के मध्य में समस्त वर्ण आ जाते हैं। इसी प्रकार सृष्टि में जो भी है, वह परमात्मा ही हैं।

यहाँ श्रीभगवान् कहते हैं, "सारे यज्ञ मेरा ही स्वरूप हैं। जो कार्य सृष्टि के कल्याण के लिए यज्ञ के रूप में चलते हैं, वे भी मेरा ही स्वरूप है। इस प्रकार **क्रतु, यज्ञ, अग्नि, स्वथा, हुतम्, मन्त्रं**, अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ।"

हमारे वेदों में भी परमात्मा की आराधना करने के लिए श्रौत, स्मार्त आदि अनेक प्रकार के यज्ञ बताए गए हैं। यज्ञ में अग्नि को आहूति दी जाती है तथा अग्नि देवता को वरदान प्राप्त है कि उनको आहुति डाले जाने पर वे उसे देवताओं तक पहुँचाते हैं। सामूहिक रूप से इस प्रकार किया जाने वाला कार्य यज्ञ कहलाता है, इसलिए हम "**गीताजी का महायज्ञ"** कहते हैं। गीता परिवार का प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार सेवाकार्य करता है, तभी यह महायज्ञ अनवरत चल रहा है।

श्रीभगवान् कहते हैं, "**स्वधा अहं"** स्वधा पितरों के लिए दी जाने वाली आहूति होती है। स्वाहा कहते हुए जब सामग्री डाली जाती है तो वह देवताओं को प्राप्त होती है। श्रीभगवान् कहते हैं उसमें औषधि भी मैं ही हूँ। आहुति डालने के लिए उपयोगी पवित्र शुद्ध घी अर्थात् आज्य भी मैं ही हूँ। यज्ञ करते हुए कहे जाने वाले मन्त्र भी मैं ही हूँ। हवन रूपी क्रिया भी मैं ही हूँ और यज्ञ करने वाला भी मैं ही हूँ।"

इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं-

जिस प्रकार विद्युत निर्माण की प्रक्रिया में या सृष्टि में जो भी निर्माण कार्य किया जाता है, उसमें लगने वाला कच्चा माल भी परमात्मा से ही प्राप्त होता है, जैसे कोयले से या पानी से बिजली निर्मित की जाती है और सौर ऊर्जा भी सूर्यदेव से प्राप्त होती है। जिस यन्त्र से वह निर्मित की जाती है, वह सब सृष्टि में निर्माण होता है, पानी भी हम निर्माण नहीं करते हैं। हम श्रीभगवान् द्वारा दी गयी बुद्धि से और उनके द्वारा उपलब्ध करवायी गई वस्तुओं से ही अनेक नयी-नयी वस्तुएँ बना सकते हैं।

9.17

पिताहमस्य जगतो, माता धाता पितामहः।
वेद्यं(म्) पवित्रमोङ्कार, ऋक्साम यजुरेव च।।9.17।।

विवेचन- अब श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! तुम्हारे मन में प्रश्न उठता होगा कि तुम भी मेरे अंश हो, सृष्टि भी मेरा अंश है तो फिर मुझे किसने बनाया?"

श्रीभगवान् कहते हैं,
"**इस सम्पूर्ण जगत का धाता अर्थात् धारण करने वाला मैं ही हूँ।**

क्या धरा हमने बनायी क्या बुना हमने गगन,
क्या हमारी ही वजह से बह रहा सुरभित पवन,
या अगन के हम हैं स्वामी नियंता जलधार के,
या जगत के सूत्रधार नियामक संसार के।

यह पृथ्वी हमें गुरुत्वाकर्षण से धारण करती है, पृथ्वी सूर्य के चक्कर लगाती है, उसे सूर्यदेव ने धारण किया है। सूर्य को ब्रह्माण्ड ने धारण किया है। इस प्रकार यह सृष्टि गुरुत्वाकर्षण के कारण परिक्रमा लगाती रहती है।

यहाँ श्रीभगवान् बताते हैं कि "इसका निर्माण करने वाला पिता भी मैं ही और माता भी मैं ही हूँ। जन्म देने वाली प्रकृति भी मैं ही हूँ और पिता का पिता अर्थात् पितामह भी मैं ही हूँ।

श्रीभगवान् का निर्माण किसने किया? इस प्रश्न का निर्माण ही नहीं होता है। वे स्वयंभू हैं। जानने योग्य हैं, अर्थात् उस परमपिता को जानना जिससे हमारी निर्मिति हुई है। परमात्मा ने केवल मनुष्य को बुद्धि प्रदान की है, अतः श्रीभगवान् कहते हैं, "**पवित्र ॐकार भी मैं ही हूँ**।" अ, उ, म् जिसे अङ्ग्रेज़ी में **GOD** (Generator, Operator तथा destroyer) कहा जाता है, अर्थात्

"**निर्माता, पालनकर्ता और संहारकर्ता- तीनों मैं ही हूँ।"**

श्रीभगवान् कहते हैं कि वेदों का निर्माण भी मुझसे ही हुआ है। तीन मूल वेद हैं-

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद।

आगे चलकर श्री वेदव्यासजी ने **अथर्ववेद** का निर्माण, सृष्टि का जो संविधान है, उसके अनुसार उन वेदों का विभाजन करते हुए किया।

शिव पुराण में एक कथा आती है। भगवान् शिवजी के विवाह के समय जब नारद जी ने भगवान् शिवजी से उनके पिता का नाम पूछा तो भगवान् शिवजी ने कहा, "**विष्णु जी**"। नारद जी उनके पिताजी के पिता का नाम अर्थात् शिवजी के दादाजी का नाम पूछा तो शिवजी ने कहा, "**ब्रह्मा जी**"। फिर नारदजी ने उनके भी पिता का अर्थात् परदादा का नाम पूछा तो भगवान शिवजी ने कहा, "**शिव**"।

अर्थात् **ब्रह्मा, विष्णु, महेश- सबकुछ शिव ही हैं।** परमतत्त्व एक ही है।

यह जानना ही स्वयं को जानना है। संसार में आने के बाद यदि हमने स्वयं को ही नहीं जाना, सृष्टिकर्ता परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध ही नहीं जाना तो हमारा पृथ्वी पर आना ही व्यर्थ हो गया।

जब हम परीक्षा देने जाते हैं तब प्रश्नपत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण सूचना लिखी होती है, जैसे प्रथम प्रश्न अनिवार्य है, बाकी दस प्रश्नों में

आप कोई छः प्रश्न हल कर सकते हैं। किसी ने यह सूचना नहीं पढ़ी तो वह बाकी के छः प्रश्न हल करता रहता है और समय समाप्त हो जाता है। वह पहला प्रश्न हल नहीं कर पाता, उसके पहले ही उत्तर पुस्तिका छीन ली जाती है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि जो जानना चाहिए, वही छूट जाता है। समय समाप्त हो जाता है और मनुष्य को देह छोड़ कर जाना पड़ता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि जिसे जानने के लिए पृथ्वी पर आए हो, पहले उसे जानो।

9.18

गतिर्भर्ता प्रभुः(स्) साक्षी, निवासः(श्) शरणं(म्) सुहृत्।
प्रभवः(फ्) प्रलयः(स्) स्थानं(न्), निधानं(म्) बीजमव्ययम्।।9.18।।

विवेचन- गति अर्थात् गन्तव्य तक पहुँचने के लिए गति। भरण-पोषण करने वाला प्रभु अर्थात् सर्वसमर्थ, सभी का स्वामी। साक्षी अर्थात द्रष्टा के रूप में देखने वाला, निवास स्थान एवं नतमस्तक होते हुए, शरण में जाने योग्य। सुहृत का अर्थ है परोपकार की इच्छा न रखते हुए भी माता के समान हमारा हित करने वाला।

श्रीभगवान् कहते हैं-
"**मामेकं शरणम् व्रज।"**

प्रभव अर्थात् उत्पत्ति,
प्रलय अर्थात् विलय।

श्रीभगवान् कहते हैं कि "उत्पत्ति, प्रलय और स्थिति जिसके द्वारा होती है और जिसका कभी नाश नहीं होगा, ऐसा सब कुछ जहाँ एकत्र होता है, वह मैं ही हूँ।"

9.19

तपाम्यहमहं(वँ) वर्षं(न्), निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं(ञ्) चैव मृत्युश्च, सदसच्चाहमर्जुन॥9.19॥

हे अर्जुन ! (संसार के हित के लिये) मैं (ही) सूर्य रूप से तपता हूँ, मैं (ही) जल को ग्रहण करता हूँ और (फिर उस जल को) (मैं ही) वर्षा रूप से बरसा देता हूँ (और तो क्या कहूँ) अमृत और मृत्यु तथा सत् और असत् (भी) मैं ही हूँ।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् बताते हैं कि सूर्य के रूप में, मैं ताप देता हूँ, फिर नदियों के जल को आकर्षित करता हूँ। सूर्य की गर्मी से वह जल भाप बनकर ऊपर जाकर बादल में बदल जाता हैं। उसी बादल से वर्षा के रूप में, मैं वह जल उत्सर्जित करता हूँ।

हे अर्जुन! मैं अमृत भी हूँ, अविनाशी भी मैं हूँ और मृत्यु भी मैं ही हूँ। अमरत्त्व का कारण भी मैं ही हूँ और मृत्यु का कारण भी मैं ही हूँ। बन्धन भी मैं ही हूँ, मोक्ष भी मैं ही हूँ। मैं सत् भी हूँ और असत् भी हूँ। असत् का अर्थ यहाँ झूठ से नहीं है,

असत् अर्थात् सूक्ष्म।

हम जो इन्द्रियों से जान पाते हैं, उसी को सत्य समझते हैं। उससे परे जो होता है उसे हम असत्य समझते हैं, इसलिए हम परमात्मा को भी प्रयोगशाला में सिद्ध करना चाहते हैं। हम एक दाना भूमि में डालते हैं तो श्रीभगवान् उस पर वर्षण करके हजारों दानों की निर्मिति कर देते हैं। संसार-चक्र का सञ्चालन श्रीभगवान् के कारण ही होता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि कुछ परमात्मा की आराधना, पूजा करने वाले लोग भी परमात्मा के लिए ये सब नहीं करते, अपितु किसी और हेतु के लिए जैसे- भौतिक उन्नति, पद-प्रतिष्ठा या अन्य भोगों को प्राप्त करने के लिए करते हैं और फिर परमात्मा साध्य नहीं बल्कि साधन हो जाते हैं। ऐसे लोग मुझ तक नहीं पहुँचते। वह पद कभी न कभी छिन ही जाता है परन्तु जो परमात्मा तक पहुँचते हैं, उनका पद कभी छीना नहीं जाता।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

जो भी व्यक्ति परमात्मा तक पहुँचते हैं, उनके योगक्षेम का वहन श्रीभगवान् स्वयं करते हैं। यहाँ श्रीभगवान् की तत्त्वज्ञानपरक भाषा भक्ति में परिणित होती है। इस अध्याय में **ज्ञानयोग, भक्तियोग तथा कर्मयोग** का सङ्गम होता है।

इसके उपरान्त सन्त श्री ज्ञानेश्वर महाराज एवं श्रीगुरुदेव के चरणों में वन्दन करते हुए आज के अति सुन्दर विवेचन का समापन किया गया और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तरी

प्रश्नकर्ता - इला दीदी
प्रश्न- आज बीसवाँ और इक्कीसवाँ श्लोक नहीं लिया ?
उत्तर- ये श्लोक बहुत ही महत्वपूर्ण हैं, आज उन्नीस तक श्लोक हुए हैं बाकी विस्तार से अगले विवेचन सत्र में करेंगे।

प्रश्नकर्ता - विजया दीदी
प्रश्न- हमने सुना था कि भगवान श्रीकृष्ण जी और भगवान शिव जी का जन्म नहीं होता?
उत्तर- पौराणिक कथाओं में जो भी कहानियों की रचना होती है उसमें जन्म और मृत्यु के लिए इसलिए बताया जाता है कि ये सब सामान्य मनुष्य को ज्ञात हो सके, परन्तु श्रीभगवान् की सृष्टि में जो भगवान शिव है, वे मनुष्य रूप में भी आ सकते हैं और निर्गुण भी रह सकते हैं। श्रीकृष्णजी भी सगुण और निर्गुण दोनों ही प्रकार में रहे हैं। उनका, जैसा हमारा जन्म हुआ है वैसा तो नहीं हुआ होगा परन्तु वे हमारे सामने सगुण साकार रूप में प्रकट हो सकते हैं क्योंकि जो सगुण होता है वह निर्गुण होता है और जो निर्गुण होता है वह सगुण होता है इसलिए हमें इन भ्रान्तियों में नहीं पड़ना चाहिए।

प्रश्न- जिस प्रकार दुर्गा सप्तशती में बताते हैं कि माता ही सबसे बड़ी भगवान् हैं और शिव चालीसा में भगवान् शिव ही बड़े हैं और विष्णु पुराण में भगवान् विष्णुजी ही बड़े हैं? दुर्गा जी और शिवजी को, क्या अवतार मानते हैं? क्या वे परम ब्रह्म परमात्मा हैं?
उत्तर- यह बिल्कुल सही है कि वे परमात्मा के ही अवतार हैं और परम ब्रह्म परमात्मा के ही स्वरूप हैं और देवता भी परमात्मा की ही सेवा करने वाली सृष्टि की दिव्य आत्माएँ हैं।

उदाहरण के लिए हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार हमारे प्रधानमन्त्री हैं और उनके अलग-अलग कार्य करने के लिए अलग-अलग मन्त्रिमण्डल होते हैं। इसी प्रकार परमात्मा की ये जो शक्तियाँ हैं यह सृष्टि की सेवा इसी प्रकार से करती हैं जिस प्रकार वरुण देवता जल के देवता है, लक्ष्मी जी धन की देवी हैं, सरस्वती माँ स्वर की देवी है और गणेश जी बुद्धि के देवता हैं। जब हम उनकी उसी रूप में आराधना करते हैं तो वे हमें वही वरदान देते हैं।

प्रश्न- दुर्गा जी और शिवजी कैसे प्रकट होते हैं?
उत्तर- दोनों परमात्मा के ही तीन रूपों में आते हैं। दुर्गा जी शिव की शक्ति हैं, वे एक ही रूप माने जाते हैं, जैसे अग्नि और दाह यह अलग नहीं माने जा सकते हैं, ये एक ही रूप में माने जाते हैं। सूर्य और प्रकाश क्या अलग हो सकते हैं? चन्द्रमा और उसकी शीतलता क्या भिन्न हो सकती है? नहीं, ये सब परमात्मा के ही रूप है इसलिए शिव और शक्ति को भी एक ही रूप में दिखाते हैं।

शिवजी को हम साम्ब भी कहते हैं

जैसे **स+अम्ब** अर्थात् **जो अम्बाजी के साथ होते हैं।**
वे सदाशिव साम्ब होते हैं।

प्रश्न- क्या भगवान् शिवजी, श्रीविष्णु जी के ही रूप है?
उत्तर- ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ये परम ब्रह्म परमात्मा के गुणों को लेकर आते हैं। जो दत्तात्रेय भगवान् हैं वे त्रिगुणात्मक है। ये परम ब्रह्म परमात्मा तीनों रूपों के गुणों का आधार लेकर सृष्टि के सारे कार्यों की रचना करते हैं।

प्रश्नकर्ता- सञ्जीव भैया
प्रश्न- जो श्रीमद्भगवद्गीता हम पढ़ते हैं वह सर्वप्रथम किसने लिखी है?
उत्तर- श्रीमद्भगवद्गीता भगवान वेदव्यास जी ने लिखी है। उन्होंने ही महाभारत की रचना भी की। लेखनी जो थी वह भगवान् श्रीगणेश जी की थी। उन्होंने कुछ रचनाएँ सोचकर श्लोकों का निर्माण किया।

गुरुजी कहते हैं कि श्रीगणेशजी ने यह तो नहीं बताया कि यह पहला अध्याय है या दूसरा अध्याय है परन्तु जब अर्जुन द्वारा प्रश्न पूछे जा रहे थे, वे भगवान् वेदव्यास जी ने सुने क्योंकि वे विकल ध्यानी थे और सूक्ष्म रूप में वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने उसे सुना और अपने काव्य में उसे पिरो दिया।

श्रीभगवान् की हम पर बहुत कृपा है कि श्रीमद्भगवद्गीता पाँच हजार साल बाद भी हमें पढ़ने को मिल रही है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||